
इकाई 9 वाद-संवाद प्रक्रिया एवं सामाजिक परिवर्तन

इकाई की रूपरेखा

- 9.0 उद्देश्य
- 9.1 प्रस्तावना
- 9.2 वाद-संवाद प्रक्रिया की अवधारणा
- 9.3 वाद-संवाद प्रक्रिया के नियम
 - 9.3.1 विपरीत की एकता एवं संघर्ष का नियम
 - 9.3.2 निषेध का निषेध नियम
 - 9.3.3 मात्रात्मक से गुणात्मक परिवर्तनों में परिवर्तन का नियम
- 9.4 वाद-संवाद प्रक्रियापरक भौतिकवाद के नियमों का प्रयोग
 - 9.4.1 आदिम साम्यवादी समाज
 - 9.4.2 दास प्रथावादी समाज
 - 9.4.3 सामंतवादी समाज
 - 9.4.4 पूंजीवादी समाज
- 9.5 सामाजिक परिवर्तन एवं क्रांति
- 9.6 सारांश
- 9.7 शब्दावली
- 9.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 9.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.0 उद्देश्य

यह इकाई वाद-संवाद प्रक्रिया की अवधारणा की तथा सामाजिक परिवर्तन में वाद संवाद प्रक्रिया के योगदान की जानकारी देती है। इसको पढ़ने के बाद आपके द्वारा संभव होगा

- वाद-संवाद प्रक्रिया एवं सामाजिक परिवर्तन की मार्क्सवादी अवधारणाओं की विवेचना करना
- वाद-संवाद प्रक्रिया के नियमों की व्याख्या करना
- सामाजिक परिवर्तन को समझने हेतु वाद-संवाद प्रक्रिया के नियमों का योगदान बताना
- सामाजिक परिवर्तन एवं क्रांति के संदर्भ में मार्क्स के विचारों को प्रस्तुत करना।

9.1 प्रस्तावना

इस खंड की पूर्ववर्ती इकाईयों (6.7 तथा 8) में आपने समाज के विकास के इतिहास के बारे में मार्क्सवादी चिन्तन के मौलिक सैद्धांतिक एवं अवधारणात्मक रूप के बारे में जाना। उत्पादन की शक्तियों, उत्पादन के संबंधों तथा उत्पादन के तरीकों के संदर्भ में मानवीय इतिहास की भौतिकवादी, वैज्ञानिक व्याख्या में मार्क्स के विशिष्ट योगदान का अध्ययन करने के पश्चात् वर्ग एवं संघर्ष पर उसके विचारों को समझना भी आवश्यक होता है। वर्ग एवं वर्ग संघर्ष पर लिखी गई इकाई 8 में इन विचारों की चर्चा की गई है।

प्रस्तुत इकाई के दो प्रमुख उद्देश्य हैं: (i) आपको वाद-संवाद प्रक्रिया एवं परिवर्तन की महत्वपूर्ण मार्क्सवादी अवधारणाओं से अवगत कराना (ii) सामाजिक परिवर्तन से संबंधित कार्ल मार्क्स द्वारा प्रदत्त सम्पूर्ण अवधारणात्मक एवं सैद्धांतिक संरचना को संक्षेप में प्रस्तुत करना। इस इकाई को चार भागों में विभक्त किया गया है।

पहले भाग (9.2) में आपको वाद-संवाद प्रक्रिया की अवधारणा से अवगत कराया गया है। इसके साथ-साथ वाद-संवादपरक प्रक्रिया भौतिकवाद एवं सामाजिक परिवर्तन की सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य में विवेचना की गई है।

दूसरे भाग (9.3) में वाद संवाद प्रक्रिया के नियमों को प्रस्तुत किया गया है।

तीसरे भाग (9.4) में सामाजिक परिवर्तन व मार्क्सवादी चिन्तन को एक और दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है। यह भाग सामाजिक परिवर्तन एवं उत्पादन की बदलती हुई प्रणालियों के बारे में है। पूर्ववर्ती इकाईयों में भी, इस बात की विवेचना की गई है, परन्तु यहां पर समाज में परिवर्तन के ऐतिहासिक वाद-संवाद प्रक्रिया पक्ष पर प्रकाश डालने पर जोर दिया गया है।

चौथे भाग (9.5) में सामाजिक परिवर्तन एवं क्रांति के संदर्भ में मार्क्स के विचारों को संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है।

9.2 वाद-संवाद प्रक्रिया की अवधारणा

वाद-संवाद प्रक्रिया का अर्थ वाद-संवाद (dialogue) की बौद्धिक विवेचना पद्धति से है। यह तर्कशास्त्र की अवधारणा है। यूनानी दार्शनिक अरस्तू (384-322 ईसा पूर्व) के अनुसार, इसे प्रश्नोत्तर द्वारा तर्क वितर्क के लिये प्रयुक्त किया जाता है। अरस्तू से पूर्व, एक अन्य यूनानी दार्शनिक प्लेटो (427-397 ईसा पूर्व) ने इस अवधारणा को अपने दार्शनिक विचारों के संदर्भ में विकसित किया था। प्लेटो से पूर्व, एक और यूनानी दार्शनिक सुकरात (470-390 ईसा पूर्व) ने इस अवधारणा को सभी विज्ञानों की मूल धारणाओं के परीक्षण हेतु प्रयुक्त किया था। मध्य काल के अंत तक, यह अवधारणा तर्कशास्त्र का एक हिस्सा बनी रही। इस अवधारणा की तर्क-वितर्क (reason) की परम्परा के अनुसार जर्मन दार्शनिक इमानुएल काँट (1724-1804) ने यूरोप के आधुनिक दर्शन में इसका प्रयोग किया। उसने वाद-संवाद प्रक्रिया का प्रयोग इस बात की विवेचना करने के लिये किया कि आनुभाविक घटनाओं को नियंत्रित करने वाले नियमों से गैर-आनुभाविक वस्तुओं की व्याख्या नहीं की जा सकती है।

वाद-संवाद प्रक्रिया का एक और भी अर्थ है। इसके अनुसार वाद-संवाद को एक प्रक्रिया समझा जाता है। इसका तात्पर्य है कि वाद-संवाद प्रक्रिया तर्क वितर्क (reason) की आरोही (ascending) एवं अवरोही (descending) स्वरूपों में प्रक्रिया है। वाद-संवाद प्रक्रिया के आरोही स्वरूप से अध्यात्मिक यथार्थ के अस्तित्व को दर्शाया जा सकता है, उदाहरण के लिये, ईश्वर के स्वरूपों को। वाद-संवाद प्रक्रिया के अवरोही स्वरूप से आनुभाविक घटना जगत में अध्यात्मिक यथार्थ की अभिव्यक्ति की व्याख्या की जा सकती है।

आइए, हम देखें कि कार्ल मार्क्स ने वाद-संवाद प्रक्रिया की अवधारणा का प्रयोग कैसे किया। यहां हमें यह याद रखना होगा कि मार्क्स ने वाद-संवाद प्रक्रियापरक भौतिकवाद की अवधारणा को जर्मन दार्शनिक हीगल के प्रत्ययवादी सिद्धांतों की आलोचना के आधार पर विकसित किया। आपको याद होगा कि आपको हीगल के बारे में इकाई 6 के कोष्ठक 6.1 तथा 6.2 में अवगत कराया गया था कि हीगल एक प्रत्ययवादी दार्शनिक था। वह यथार्थ को मानस में विचारों की रचना मानता था (कोष्ठक 6.1 तथा 6.2 पुनः पढ़िए)।

हीगल ने वाद-संवाद प्रक्रिया की अवधारणा के तर्क-वितर्क एवं प्रक्रिया - दोनों स्वरूपों को

मिलाकर विकसित किया। मौटे तौर पर उसने वाद-संवाद प्रक्रिया को एक तार्किक प्रक्रिया के रूप में प्रयुक्त किया और सूक्ष्म स्तर पर उसने इस प्रक्रिया को तार्किक प्रक्रियाओं की संचालक शक्ति का स्रोत माना। हीगल की मान्यता थी कि ईश्वर के बारे में आत्मज्ञान मानवीय ज्ञान के माध्यम से होता है। दूसरे शब्दों में, मानवीय विचारों की अवधारणाएं मानव अस्तित्व के वस्तुपरक स्वरूपों के बराबर होती हैं तथा इसी के साथ-साथ तर्क मानव प्रकृति के सिद्धांत पर आधारित होता है। इसके विपरीत, हीगल ने यह भी प्रतिपादित किया कि वाद-संवाद प्रक्रिया अधिक सूक्ष्म स्तर पर विपरीत स्थितियों को एकता के संदर्भ में समझने की चेष्टा है। हीगल ने इसे एक ऐसी प्रक्रिया बताया जो अंतर्निहित तत्वों को स्पष्ट करती है। इस प्रकार, प्रत्येक विकास अथवा परिवर्तन कम-विकसित या पूर्व अवस्था का परिणाम है। इस प्रकार से, नया विकास पूर्व अवस्था की परिणति है। अतः एक स्वरूप तथा उससे नये स्वरूप बनने की प्रक्रिया के बीच सदैव एक अप्रकट तनाव बना रहता है। हीगल ने इतिहास को स्वतंत्रता की चेतना की प्रगति के रूप में समझा है (कोष्ठक 6.2 देखिये)।

प्रारंभ में मार्क्स हीगल के दर्शन से प्रभावित था, परन्तु बाद में उसने इसकी प्रत्ययवादी प्रकृति की आलोचना की तथा स्वयं वाद-संवाद प्रक्रियापरक भौतिकवाद का प्रतिपादन किया। हीगल द्वारा पदार्थ (matter) के स्थान पर विचारों (ideas) को अधिक महत्व देने की भी मार्क्स ने आलोचना की। उसने कहा कि वैज्ञानिक रूप से वैध वाद-संवाद प्रक्रियापरक पद्धति पाने के लिये हीगलवादी वाद-संवाद प्रक्रिया को पूरी तरह से उल्टा करना पड़ेगा। हीगल से अलग हटकर मार्क्स ने कहा कि पदार्थ ही सर्वोपरि है और हीगल की तरह वाद-संवाद प्रक्रिया में विचारों को सर्वोच्च समझना ठीक नहीं है।

आइए, अब हम मार्क्सवादी अवधारणाओं तथा वाद-संवाद प्रक्रिया की विवेचना करें। परन्तु आगामी भाग (9.3) का अध्ययन करने से पूर्व आप सोचिए और करिए 1 को पूरा कीजिये।

सोचिए और करिए 1

इस खंड में प्रयुक्त संदर्भों के आधार पर मार्क्स द्वारा लिखी गई पुस्तकों की एक संदर्भ सूची बनाइये तथा इसकी तुलना इस खंड के अन्त में दी गई संदर्भ सूची में मार्क्स द्वारा लिखित पुस्तकों से कीजिये। पुस्तक सूची बनाते समय यह याद रखिये कि आपको ये निम्न बातें बतानी हैं - (i) पुस्तक के लेखक का नाम, (ii) पुस्तक के प्रकाशन का वर्ष, (iii) पुस्तक का शीर्षक, (iv) पुस्तक के प्रकाशन का स्थान, तथा (v) पुस्तक के प्रकाशक का नाम। इनमें से कोई भी एक जानकारी न होने पर संदर्भ सूची अपूर्ण रह जाती है।

9.3 वाद-संवाद प्रक्रिया के नियम

मार्क्स द्वारा विकसित वाद-संवाद प्रक्रियापरक भौतिकवाद हीगलवादी वाद-संवाद प्रक्रिया से बिल्कुल विपरीत है। यह प्रत्येक वस्तु की व्याख्या पदार्थ के विरोधाभास के संदर्भ में करता है। वाद-संवाद प्रक्रियापरक भौतिकवाद प्राकृतिक एवं सामाजिक परिवर्तन के लिये अमूर्त नियम प्रदान करता है। तत्त्व मीमांसा (metaphysics) के ठीक विपरीत वाद-संवाद प्रक्रियापरक भौतिकवाद की मान्यता है कि प्रकृति में वस्तुएं अंतर्सम्बन्धित व अंतर्निर्भर होती हैं तथा एक दूसरे के द्वारा निर्धारित की जाती हैं। इसमें प्रकृति को एक एकीकृत समष्टि (whole) माना जाता है। वाद-संवाद प्रक्रियापरक भौतिकवाद के अनुसार परिवर्तन का नियम ही यथार्थ का नियम है। सम्पूर्ण मानवीय जगत और अजैवकीय जगत में निरंतर परिवर्तन होते रहते हैं। वस्तुतः विश्व में कुछ भी शाश्वत रूप में स्थायी नहीं है, अपितु प्रत्येक वस्तु निरंतर परिवर्तन के दौर से गुज़र रही है। ये परिवर्तन क्रमिक न होकर यकायक क्रांतिकारी रूप से होते हैं। मार्क्स के सहयोगी एंजल्स ने वाद-संवाद प्रक्रियापरक भौतिकवाद के तीन प्रमुख नियम दिये हैं, जो निम्नलिखित हैं।

9.3.1 विपरीत की एकता एवं संघर्ष का नियम

हमने अभी तक यह अध्ययन किया है कि प्रत्येक वस्तु परिवर्तित होती है और हमने परिवर्तन की प्रकृति एवं दिशा के बारे में भी जाना है। हमें अभी यह जानना बाकी है कि परिवर्तन के पीछे क्या कारण होता है। किसके कारण परिवर्तन घटित होता है ? विपरीत की एकता एवं संघर्ष का नियम वाद-संवाद प्रक्रिया का केन्द्रीय पक्ष है। यह नियम भौतिक जगत में विकास तथा शाश्वत परिवर्तन के वास्तविक कारणों अर्थात् स्रोतों को उजागर करता है।

इसके अनुसार वस्तुओं या प्रघटनाओं में आंतरिक प्रवृत्तियां (tendencies) तथा शक्तियां (forces) होती हैं जो परस्पर विपरीत होती हैं। इन परस्पर विपरीत प्रवृत्तियों अथवा विरोधाभासों के अभिन्न अंतर्सम्बन्ध विपरीत की एकता के लिये उत्तरदायी होते हैं। विश्व की वस्तुओं एवं प्रघटनाओं का यह विरोधाभास सामान्य व सार्वभौमिक प्रकृति का होता है। विश्व की कोई भी वस्तु अथवा प्रघटना ऐसी नहीं है, जिसे विपरीत में विभक्त न किया जा सके। इन परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों अथवा विपरीत में सहअस्तित्व होता है तथा एक के बिना दूसरे के बारे में सोचा भी नहीं जा सकता। फिर भी ये विपरीत शक्तियां किसी भी वस्तु में शांति से सहअस्तित्व में नहीं रह सकतीं। इन विपरीत शक्तियों की परस्पर विरोधी प्रकृति इनमें अनिर्वायतः संघर्ष पैदा करती है। प्राचीन एवं नवीन, नवोदित एवं पुरातन के मध्य संघर्ष अनिवार्य है। यहाँ यह बात जाननी महत्वपूर्ण है कि विपरीत की एकता संघर्ष की एक आवश्यक दशा है, क्योंकि संघर्ष तब ही घटित होता है, जब किसी एक वस्तु अथवा प्रघटना में विपरीत शक्तियां अस्तित्व में होती हैं। विपरीत का संघर्ष व विरोध ही चेतना एवं पदार्थ के विकास के मुख्य स्रोत हैं। विपरीत के संघर्ष से ही विकास होता है। प्रायः इन विरोधी शक्तियों में से एक शक्ति यथास्थिति को बनाये रखना चाहती है और दूसरी शक्ति यथास्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन लाना चाहती है। इस संघर्ष के कारण अनेक मात्रात्मक (quantitative) परिवर्तनों पश्चात् जब भी परिपक्व अवस्थाएं अस्तित्व में आती हैं तो एक नई स्थिति, वस्तु, प्रघटना या अवस्था या परिवर्तन का जन्म होता है। यह क्रांतिकारी परिवर्तन गुणात्मक (qualitative) परिवर्तन है। इस प्रकार वाद-संवाद प्रक्रियापरक भौतिकवाद के तीन नियमों में तार्किक अंतर्संबंध देखे जा सकते हैं।

उन बाह्य प्रभावों की भूमिका की उपेक्षा करना त्रुटिपूर्ण होगा, जो कि परिवर्तन लाने में सहायक हो सकते हैं अथवा बाधा डाल सकते हैं। सभी प्रकार के परिवर्तनों का स्रोत आंतरिक विरोधाभास है। नये विरोधाभासों का प्रादुर्भाव एक नये प्रकार के परिवर्तनों को जन्म देता है जबकि इन विरोधाभासों की विलुप्ति एक और नये प्रकार के परिवर्तन का कारण बनती है। इस नए परिवर्तन के लिये अन्य विरोधाभास उत्तरदायी होते हैं। विपरीत तत्त्वों में कभी समभाव नहीं आ पाता है। विपरीत तत्त्वों का समान प्रभाव अस्थायी व सापेक्षिक होता है, जबकि उनके बीच संघर्ष हमेशा चलता रहता है।

निषेध का निषेध नियम तथा मात्रात्मक से गुणात्मक परिवर्तनों में परिवर्तन का नियम (देखिए उपभाग 9.3.2 तथा 9.3.3), ये दोनों नियम विपरीत की एकता व संघर्ष के नियम के विशेष उदाहरण माने जा सकते हैं। प्रस्तुत नियम सभी प्रकार के विकास एवं परिवर्तन के स्रोतों को व्यक्त करते हैं।

विपरीत की एकता व संघर्ष के इस अमूर्त नियम को सामाजिक विकास के इतिहास की क्रमिक उत्पादन प्रणाली पर लागू किया जाये तो इसको सरलता से समझा जा सकता है।

9.3.2 निषेध का निषेध नियम

निषेध शब्द को दर्शनशास्त्र में सबसे पहले हीगल ने प्रयुक्त किया, परन्तु उसने इसका प्रत्ययवादी

अर्थात् आदर्शवादी अर्थ लिया। हीगल की मान्यता थी कि निषेध की अवधारणा विचार तथा चिन्तन में उपजती है। मार्क्स ने हीगल की आलोचना की तथा निषेध की भौतिकवादी व्याख्या दी। उसने बताया कि निषेध यथार्थ के विकास का एक अभिन्न अंग है। मार्क्स ने लिखा कि किसी भी क्षेत्र में कोई भी तत्त्व अपने पूर्व के अस्तित्व के स्वरूप को नकारे बिना अथवा निषेध किये बिना विकसित नहीं हो सकता है।

आइये, हम इसको उदाहरण के द्वारा और अधिक स्पष्ट रूप से समझें। पृथ्वी की ऊपरी सतह अनेक भूगर्भीय युगों से गुजर चुकी है। प्रत्येक नया युग पिछले युग के आधार पर अस्तित्व में आता है और इस प्रकार पुराने युग के निषेध का प्रतिनिधित्व करता है। प्राणी जगत में भी प्राणियों की प्रत्येक नई किस्म अपनी से पुरानी किस्म के आधार पर पैदा होती है और साथ ही साथ उसके निषेध का प्रतिनिधित्व भी करती है। इसी प्रकार समाज का इतिहास भी प्राचीन सामाजिक व्यवस्था के नई व्यवस्था द्वारा निषेधों की एक श्रृंखला है। जैसा कि रेमण्ड आरों (1965) ने कहा है कि पूंजीवाद सामन्तवादी समाज का निषेध है तथा समाजवाद पूंजीवाद का निषेध होगा अर्थात् समाजवाद निषेध का निषेध है। ज्ञान एवं विज्ञान के क्षेत्र में भी प्रत्येक नया वैज्ञानिक सिद्धांत प्राचीन सिद्धांतों का निषेध करता है। उदाहरण के तौर पर, बोन (Bohn) का परमाणु सिद्धांत डाल्टन (Dalton) के अणु सिद्धांत का निषेध है अथवा इसी प्रकार डार्विन के सिद्धांत ने अपने से पूर्व प्रचलित मानवीय उद्विकास के बारे में सभी सिद्धांतों का निषेध किया।

यहां एक बात ध्यान में रखने योग्य है कि निषेध किसी वस्तु अथवा प्रघटना में बाहर से प्रविष्ट नहीं करता है, अपितु यह उस वस्तु अथवा प्रघटना के आंतरिक विकास का ही परिणाम होता है। वस्तुएं अथवा प्रघटनाएं स्वयं में निहित आन्तरिक विरोधाभासों के आधार पर विकसित होती हैं। वे अपने ही विनाश की दशायें उत्पन्न करती हैं ताकि एक नई उच्चतर गुणात्मक स्थिति में परिवर्तित हो सकें। निषेध का अभिप्राय वस्तुओं और प्रघटनाओं के आंतरिक विरोधाभासों, स्वविकास तथा स्वतः परिवर्तन के माध्यम से पुरानी स्थिति को नई स्थिति में बदलना है। इस प्रकार समाजवाद पूंजीवाद का स्थान इसलिये लेता है क्योंकि यह पूंजीवाद व्यवस्था के आंतरिक विरोधाभासों का समाधान करता है।

अतः वाद-संवाद प्रक्रियापरक निषेध एक ऐसे तथ्य से उभरता है, जिसमें कि किसी भी वस्तु की निषेधित वस्तु का कुछ भाग लुप्त हो जाता है। कुछ भाग नई व्यवस्था का भाग बन जाता है यद्यपि यह परिवर्तित स्वरूप में होता है और इस नई व्यवस्था में कुछ विशुद्ध रूप से नया जुड़ जाता है। इस प्रकार निषेध की मार्क्सवादी व्याख्या का प्रमुख गुण यह है कि यह निरन्तरता (continuity) को मान्यता प्रदान करती है जो कि विकास में नये और पुराने के मध्य एक कड़ी का कार्य करती है। हमें यह बात भी ध्यान रखनी चाहिये कि नई अवस्था कभी भी पुरानी अवस्था को पूरी तरह से नहीं बदलती है। यह पुरानी अवस्था में से कुछ विशिष्ट तत्वों अथवा पक्षों को अपने में समेट लेती है और यह क्रिया भी इसमें यान्त्रिक रूप से घटित नहीं होती, अपितु अपनी स्वयं की प्रकृति के अनुरूप नई अवस्था प्राचीन तत्वों को अपने आप में आत्मसात तथा परिवर्तित करती है।

उदाहरण के लिये, भारत में उपनिवेशवाद को उखाड़ फेंकने के बाद हमने एक नये राष्ट्र की रचना प्रारंभ की। इस प्रक्रिया में हमने राष्ट्रीय विकास को अवरुद्ध करने वाले सभी उत्पीड़क तत्वों और संस्थाओं को हटाने का प्रयास किया, फिर भी हमने उपनिवेशवाद द्वारा पीछे छोड़े गये शैक्षणिक, वैधानिक तथा प्रशासन तंत्रीय ढाँचे तथा यातायात एवं संचार की आधुनिक अधोसंरचना को अपना लिया व उसको बनाये रखा।

इन्हीं कारणों से विकास की अवस्थाओं में क्रमिक परिवर्तन प्रगतिशील होता है। यद्यपि कोई भी

अवस्था पूर्ण रूप से पुनर्घटित नहीं होती, फिर भी गत अवस्थाओं की कुछ विशेषताएं बाद की अवस्थाओं में रूपांतरित स्वरूप में घटित होती हैं। इस प्रकार प्राचीन तो नष्ट हो जाता है और नया उदित होता है। यह विकास की एक अवस्था मात्र है, अन्तिम स्थिति नहीं। क्योंकि विकास कभी नहीं रुकता। कोई भी नई अवस्था सदैव नई नहीं रहती। विकास की प्रक्रिया में और अधिक नई तथा प्रगतिशील अवस्था के लिये दशायें बनने लगती हैं और जब नई दशायें परिपक्व हो जाती हैं तो एक बार पुनः निषेध घटित होता है और इसी को निषेध का निषेध कहते हैं। इस प्रक्रिया में पहले निषेध के बाद वाला निषेध और भी उच्चतर स्थिति का होता है और यह प्रक्रिया अनवरत रूप से चलती रहती है। इस प्रकार विकास की प्रक्रिया में असंख्य क्रमिक निषेध घटित होते हैं, जिसके द्वारा पुरानी स्थितियों अथवा वस्तुओं का स्थान नई वस्तुयें लेती हैं।

9.3.3 मात्रात्मक से गुणात्मक परिवर्तनों में परिवर्तन का नियम

प्रकृति में प्रत्येक वस्तु निरंतर गति और परिवर्तन की स्थिति में है। किसी भी नियत समय पर कुछ वस्तुएं अस्तित्व में आ रही हैं, कुछ वस्तुएं विकसित हो रही हैं तथा कुछ वस्तुएं क्षरित हो रही हैं अथवा उनका अस्तित्व समाप्त हो रहा है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि प्रत्येक वस्तु निरंतर परिवर्तनशील है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि मार्क्स की मान्यता थी कि यथार्थ का नियम परिवर्तन का नियम है। अब परिवर्तन की प्रकृति के बारे में प्रश्न उठता है कि यह परिवर्तन किस प्रकार का परिवर्तन है? प्रस्तुत नियम इस विशिष्ट समस्या का समाधान करता है। इस नियम के अनुसार, परिवर्तन की प्रक्रिया सरल अथवा क्रमिक नहीं होती, अपितु यह अनेक मात्रात्मक परिवर्तनों का परिणाम होती है, जो कि अंततः परिपक्व दशाओं की उपलब्धि होने पर किसी भी निश्चित समय पर अमूर्त गुणात्मक परिवर्तनों से गुजरती है। घटनाओं की पुनरावृत्ति कभी नहीं होती। यह परिवर्तन सदैव निम्न से उच्चतर की ओर, सरल से जटिल की ओर, तथा यथार्थ के समांग (homogenous) स्तर से विषमांग (heterogenous) स्तरों की ओर होता है।

आइए, अब हम मात्रात्मक और गुणात्मक परिवर्तनों को विस्तार से समझें। किसी भी नई अवस्था के प्रादुर्भाव या जन्म तथा किसी भी प्राचीन अथवा पुरानी अवस्था की समाप्ति या विलुप्ति को तार्किक एवं दार्शनिक रूप से गुणात्मक परिवर्तन कहा जा सकता है। जबकि अन्य सभी परिवर्तन जिनमें किसी भी वस्तु के विभिन्न अंग अथवा पक्ष पुनर्व्यवस्थित हो जाते हैं, बढ़ जाते हैं, अथवा घट जाते हैं, परंतु उस वस्तु की मूल पहचान नहीं बदलती, तो उस स्थिति को मात्रात्मक परिवर्तन कहा जा सकता है। इसको और अधिक सरल रूप से समझने के लिये, यह कहा जा सकता है कि गुणात्मक परिवर्तनों के दो स्वरूप होते हैं: (i) कोई वस्तु जिसका अस्तित्व नहीं था, लेकिन अब वह अस्तित्व में आ गई है, तथा (ii) कोई वस्तु जो पहले अस्तित्व में थी, लेकिन अब उसका अस्तित्व समाप्त हो गया। दूसरी ओर मात्रात्मक परिवर्तन असीमित रूप से व्यापक होते हैं। उदाहरणार्थ छोटा-बड़ा, कम-अधिक, कभी-कभी, तेज-धीमा, गर्म-ठण्डा, भारी-हल्का, बेहतर-घटिया, समृद्ध-निर्धन, आदि। वस्तुतः प्रकृति की प्रत्येक वस्तु में मात्रात्मक परिवर्तन निरंतर घटित होते रहते हैं और प्रत्येक प्रक्रिया की प्रकृति द्वारा निर्धारित सीमा तक पहुंच जाते हैं तो इनमें अपरिहार्य महापरिवर्तन होते हैं। जब निरंतर परिवर्तन एक विशिष्ट सीमा तक पहुंच जाता है, जिसके परे और अधिक मात्रात्मक परिवर्तन संभव नहीं है। परिपक्वता की स्थिति को दर्शनशास्त्र में मापात्मकता (measure) की सीमा कहते हैं। यह महापरिवर्तन गुणात्मक परिवर्तन है। इसका एक ठोस उदाहरण दिया जा सकता है, भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये एक शताब्दी से अधिक समय तक चलता रहा तथा इसमें निरंतर मात्रात्मक परिवर्तन आते रहे और जब वह अपनी सीमा पर पहुंच गया तो 15 अगस्त, 1947 की मध्य रात्रि को महापरिवर्तन घटित हुआ और भारत एक स्वतंत्र राष्ट्र बन गया। उपनिवेशवाद से मुक्ति गुणात्मक परिवर्तन था। इसी प्रकार व्यक्ति में आयु बढ़ने की प्रक्रिया एक

क्षण के लिये भी नहीं रुकती। व्यक्ति प्रति क्षण उम्र में बढ़ते रहते हैं। अर्थात् लोग निरंतर मात्रात्मक परिवर्तनों से गुजरते रहते हैं और जब वे प्रकृति द्वारा निर्धारित सीमा पर पहुंच जाते हैं तो उनमें गुणात्मक परिवर्तन आता है, अर्थात् मृत्यु हो जाती है। इसी उदाहरण को किसी शिशु के जन्म पर भी लागू किया जा सकता है। गर्भधारण के दिन से ही पूरे गर्भकाल में गर्भस्थ शिशु में मात्रात्मक परिवर्तन होते रहते हैं, परन्तु गुणात्मक परिवर्तन उसी क्षण होता है, जब शिशु का इस विश्व में आगमन होता है, अर्थात् उसका जन्म होता है। अतः यहाँ पर मात्रात्मक परिवर्तनों से गुणात्मक परिवर्तनों में परिवर्तन के नियम अथवा गुणात्मक परिवर्तनों से मात्रात्मक परिवर्तनों के नियम अथवा इस स्तर का अर्थ परिपक्वता अथवा मापात्मकता (measure) की स्थिति प्राप्त करने तक निरंतर मात्रात्मक परिवर्तन से है, जिनके कारण यकायक गुणात्मक परिवर्तन होते हैं, जो कि आगे होने वाले निरंतर मात्रात्मक परिवर्तनों को निर्धारित करते हैं। आइए, अब हम देखें कि मार्क्स ने मानव इतिहास में सामाजिक परिवर्तन को समझने के लिए वाद-संवाद प्रक्रियापरक भौतिकवाद के नियमों का प्रयोग कैसे किया। लेकिन पहले बोध प्रश्न 1 को जरूर पूरा कर लें ताकि अभी तक इस इकाई में पढ़ी पाठ्य सामग्री को दुहराया जा सके।

बोध प्रश्न 1

i) वाद-संवाद प्रक्रियापरक भौतिकवाद के नियमों के नाम लिखिये।

.....
.....
.....

ii) दो पंक्तियों में मात्रात्मक परिवर्तन की परिभाषा दीजिये।

.....
.....

iii) गुणात्मक परिवर्तन को तीन पंक्तियों में परिभाषित कीजिये।

.....
.....
.....

9.4 वाद-संवाद प्रक्रियापरक भौतिकवाद के नियमों का प्रयोग

प्रकृति, विश्व एवं समाज पर समान रूप से वाद-संवाद प्रक्रियापरक भौतिकवाद के सिद्धांत अथवा नियम लागू होते हैं। जब इन नियमों को समाज के इतिहास पर लागू किया जाता है तो ये ऐतिहासिक भौतिकवाद का रूप ले लेते हैं। जैसा कि आपने पूर्ववर्ती इकाइयों में अध्ययन किया है कि मार्क्स के अनुसार, मानवीय समाज चार प्रमुख उत्पादन प्रणालियों से होकर गुजरा है, जिनके नाम एशियाटिक, प्राचीन, सामंतवादी एवं पूंजीवादी प्रणाली हैं। अंततः मार्क्सवादी सिद्धांत की भविष्यवाणी के अनुसार समाज के ये क्रमिक स्वरूप साम्यवाद की अवस्था तक पहुंचेंगे।

यहां हमें यह देखना है कि उत्पादन के क्रमिक तरीकों, स्वरूपों एवं सामाजिक परिवर्तन को समझने के लिये वाद-संवाद प्रक्रियापरक भौतिकवाद के नियमों को किस प्रकार प्रयुक्त किया जाता है।

9.4.1 आदिम साम्यवादी समाज

आदिम साम्यवादी समाज उत्पादन प्रणाली का सर्वप्रथम, सरलतम तथा निम्नतम स्वरूप था। इस उत्पादन प्रणाली के काल में नये तथा उन्नत किस्म के औजारों जैसे कि तीर-कमान आदि

का विकास हुआ तथा मनुष्य ने आग का प्रयोग करना सीखा। वाद-संवाद प्रक्रियापरक भौतिकवाद के नियमों के संदर्भ में, ये परिवर्तन मात्रात्मक परिवर्तन के उदाहरण थे। कृषि एवं पशुपालन की शुरुआत भी इसी प्रकार के परिवर्तनों के उदाहरण थे। उत्पादन शक्तियाँ अत्यधिक निम्न स्तर की थी तथा उत्पादन अनुरूप ही संबंध थे। समाज में उत्पादन के साधनों पर समान व सामुदायिक स्वामित्व था। अतः उत्पादन के संबंध सहकारिता और परस्पर सहायता पर आधारित थे। ये संबंध इस तथ्य से निर्धारित होते थे कि प्रकृति की महाकाय शक्तियों का मुकाबला आदिम व्यक्ति अपने आदिम औजारों के साथ सामूहिक रूप से ही कर सकता था।

आदिम समाज में भी उत्पादक शक्तियाँ निरंतर विकसित होती रहीं। नये औजार बनाए गये और कार्य कौशल को धीरे-धीरे बढ़ाया गया। इस समाज का सर्वाधिक महत्वपूर्ण परिवर्तन था, धातु के औजार बनाना। उत्पादकता के विकास के साथ-साथ समाज की सामुदायिक संरचना टूट कर परिवारों के रूप में फैलने लगी। ऐसी स्थिति में निजी सम्पत्ति की अवधारणा विकसित हुई तथा धीरे-धीरे उत्पादन के साधनों पर परिवारों का स्वामित्व होने लगा। यहां पर उत्पादन के सामुदायिक संबंधों तथा शोषक वर्ग के संभावित स्वरूपों के मध्य विरोधाभास के कारण गुणात्मक परिवर्तन हुआ, अर्थात् आदिम साम्यवादी उत्पादन प्रणाली का प्राचीन उत्पादन प्रणाली में परिवर्तन हुआ। इस व्यवस्था में विपरीत शक्तियों के मध्य संघर्ष था जिसके परिणामस्वरूप आदिम साम्यवादी व्यवस्था का निषेध हुआ। इसके फलस्वरूप दास प्रथा की एक नई अवस्था अस्तित्व में आई। दास प्रथा को आदिम साम्यवादी व्यवस्था के निषेध के रूप में वर्णित किया जा सकता है।

9.4.2 दास प्रथावादी समाज

समाज के इस स्वरूप में आदिम समानता का स्थान सामाजिक असमानता ने ले लिया तथा दासों और मालिकों के वर्गों का उदय हुआ। उत्पादन शक्तियों में और अधिक मात्रात्मक परिवर्तन हुए। दास प्रथावादी समाज में उत्पादन के संबंध मालिकों के सम्पूर्ण स्वामित्व पर आधारित थे। मालिकों का उत्पादन के साधनों, दासों तथा उनके द्वारा किए गए उत्पादन पर स्वामित्व होता था।

इस समाज में मालिक और दासों के मध्य विरोध मौजूद था। जब इन विरोधाभासों के मध्य संघर्ष परिपक्व दशाओं तक पहुंच गया तो समाज में गुणात्मक परिवर्तन हुआ। अर्थात् दास प्रथावादी समाज का निषेध हुआ, जिसके फलस्वरूप यह समाज सामन्तवादी समाज में बदल गया। विपरीतों के संघर्ष अर्थात् मालिक और दासों के बीच संघर्ष के कारण हिंसक दास क्रांतियाँ हुईं, यह दास प्रथावादी समाज का निषेध था। अतः सामन्तवादी व्यवस्था को निषेध का निषेध कहा जा सकता है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि यहां पर सामन्तवादी समाज को दास प्रथावादी समाज के निषेध के उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है, जो कि स्वयं आदिम साम्यवादी समाज का निषेध है।

9.4.3 सामन्तवादी समाज

दास प्रथा पहली अवस्था थी, जिसमें मालिक वर्ग द्वारा दास वर्ग के शोषण तथा आधिपत्य पर उत्पादन के संबंध आधारित थे। यह वह अवस्था थी, जहां से वर्ग असमानता और वर्ग संघर्ष का इतिहास शुरू हुआ है। पूर्व अवस्था की तुलना में, इस अवस्था में ही उत्पादन के संबंधों में मौलिक गुणात्मक अंतर आये। सामन्तवादी अवस्था के दौरान उत्पादन की शक्तियों में तीव्र मात्रात्मक परिवर्तन हुये, जिनके अंतर्गत पहली बार ऊर्जा के, जल तथा वायु जैसे अजैवकीय साधनों का प्रयोग हुआ। इन उत्पादक शक्तियों के विकास में सामन्तवादी उत्पादन के संबंधों से सहायता मिली। सामन्तवादी भूपतियों ने भूमिहीन किसानों को उत्पीड़ित एवं शोषित किया। कालांतर में नगरों का विकास हुआ। इस अवस्था में व्यापार व वाणिज्य तथा उत्पादन भी बढ़ा।

ऐसी स्थिति में सामंतवादी जागीरों से अनेक भूमिहीन किसान नवविकसित नगरों में भाग गये ताकि वे वहां व्यापार कर सकें। सामंतवादी व्यवस्थाएँ विपरीतों का संघर्ष, (अर्थात् भूमिहीन किसानों और सामंतवादी भूपतियों के बीच संघर्ष) अपनी परिपक्वता पर पहुंच गया। सामंतवादी व्यवस्था का पतन हुआ तथा इसका निषेध पूंजीवादी व्यवस्था थी।

9.4.4 पूंजीवादी समाज

निजी पूंजीवादी स्वामित्व पर आधारित पूंजीवादी उत्पादन संबंधों ने उत्पादक शक्तियों की अत्यधिक तेज़ प्रगति में सहायता दी। उत्पादक शक्तियों के इस तीव्र विकास के बाद उत्पादन के पूंजीवादी संबंध इन शक्तियों के अनुरूप नहीं रह गये थे। धीरे-धीरे ये संबंध शक्तियों के विकास में बाधा बन गए। पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली का सर्वाधिक महत्वपूर्ण विरोधाभास उत्पादन के सामाजिक स्वरूप तथा उपभाग के निजी पूंजीवादी स्वरूप में निहित है। पूंजीवादी समाज में उत्पादन का स्पष्ट सामाजिक स्वरूप होता है। विशालकाय फैक्ट्रियों के लाखों श्रमिक एक साथ मिलकर काम करते हैं तथा सामाजिक उत्पादन में भाग लेते हैं, जबकि उत्पादन के साधनों के स्वामियों का एक छोटा सा समूह उनके श्रम के लाभ हड़प लेता है। यह पूंजीवाद का मूलभूत आर्थिक विरोधाभास है। ये विरोधाभास अथवा विपरीतों के संघर्ष, आर्थिक संकट और बेरोज़गारी को जन्म देते हैं। यह स्थिति पूंजीवादी और सर्वहारा वर्गों के बीच ज़बरदस्त वर्ग संघर्ष का कारण बनती है, अर्थात् दूसरे शब्दों में मात्रात्मक परिवर्तनों का कारण बनती है। यह श्रमिक वर्ग एक सामाजवादी क्रांति लाएगा। मार्क्स के अनुसार, यह क्रांति पूंजीवादी उत्पादन के संबंधों को समाप्त कर देगी तथा एक नया गुणात्मक परिवर्तन लायेगी अर्थात् साम्यवादी सामाजिक-आर्थिक संरचना स्थापित होगी।

जैसे कि हमने पहले देखा नई साम्यवादी सामाजिक-आर्थिक संरचना समाजवाद एवं साम्यवाद की दो अवस्थाओं से गुज़रकर विकसित हुई है। समाजवाद में उत्पादन के साधनों का निजी स्वामित्व समाप्त हो जाता है, और साथ ही साथ सभी प्रकार के असमानता और उत्पीड़न के स्वरूप और शोषण भी समाप्त हो जाते हैं। इसमें उत्पादन के साधनों का सार्वजनिक स्वामित्व होता है। इस प्रकार का समाज वर्गविहीन होता है। ऐसे समाज में सर्वहारा वर्ग सामूहिक रूप से उत्पादन के साधनों का स्वामी होगा तथा समाज के सदस्यों की आवश्यकता के अनुसार उत्पादन वितरित होगा। यह अवस्था सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व (dictatorship of proletariat) की अवस्था है, जो कि बाद में राज्य व्यवस्था को भी समाप्त करके राज्यविहीन समाज की स्थापना करेगी। राज्यविहीन समाज की यह अवस्था साम्यवाद में संभव होगी। जहां कि वाद-संवाद प्रक्रिया अन्ततः समाप्त हो जाएगी और एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना होगी जो किसी भी प्रकार के विरोधाभास से मुक्त होगी। लेकिन वाद-संवाद प्रक्रिया के नियमों के अनुसार विरोधाभास बने रहेंगे, क्योंकि ये विकास के मूल आधार है। साम्यवाद के अंतर्गत मानव तथा प्रकृति के बीच विरोधाभास उत्पन्न होंगे। जैसा कि आदिम साम्यवाद में होता था। वर्तमान स्थिति में अंतर केवल इतना है कि उच्च तकनीकी से प्रकृति का अधिक प्रभावशाली तरीके से शोषण किया जाएगा। इस प्रकार हमने देखा कि वाद-संवाद प्रक्रिया के ये तीन नियम मार्क्स द्वारा दी गई समाज के इतिहास की व्याख्या में क्या भूमिका निभाते हैं।

अब समय है बोध प्रश्न 2 को हल करने का, आइये, अगले भाग (9.5) पर जाने से पहले इसे पूरा कर लें।

बोध प्रश्न 2

- i) उत्पादन की चार प्रणालियों के नाम बताइये।
 - अ)
 - ब)
 - स)
 - द)

ii) वर्ग संघर्ष चरमोत्कर्ष पर पहुंचकर किस अवस्था में बदलता है?

- अ) क्रांति ब) दास प्रथा
स) बुर्जुआ द) सर्वहारा वर्ग (प्रोलिटेरियत)

iii) वर्गविहीन समाज किस अवस्था में होता है ?

.....
.....

iv) कौन सी अवस्था समाजवाद के बाद आती है तथा इसकी विशेषता क्या होती है ?

.....
.....

9.5 सामाजिक परिवर्तन एवं क्रांति

आइये, अब हम सामाजिक परिवर्तन एवं क्रांति पर मार्क्स के विचारों की विवेचना करें। जर्मन आइडियोलॉजी (1845-46) में मार्क्स और एंजल्स दोनों ने ही इतिहास को एक नई परिकल्पना दी। इसमें उत्पादन प्रणाली पर आधारित क्रमिक ऐतिहासिक अवस्थाओं के बारे में प्रमुख विचार दिये गये हैं। मार्क्स तथा एंजल्स ने एक अवस्था से दूसरी अवस्था में परिवर्तन को क्रांति की अवस्था माना है जो प्राचीन संस्थाओं और नई उत्पादक शक्तियों के बीच संघर्ष के कारण हुई। बाद में मार्क्स और एंजल्स दोनों ने ब्रिटिश, फ्रांसीसी तथा अमरीकन क्रांतियों पर अधिक ध्यान दिया और उनका गहन अध्ययन किया। उन्होंने इन क्रांतियों को बुर्जुआ क्रांति कहा। बुर्जुआ क्रांति की मार्क्स की परिकल्पना ने यूरोप और अमरीका में सामाजिक परिवर्तन के अध्ययन के लिये हमें एक परिप्रेक्ष्य प्रदान किया। सामाजिक परिवर्तन पर विद्वानों को और आगे शोध करने के लिये इस परिप्रेक्ष्य ने प्रेरणा दी।

मार्क्स ने एक दूसरे प्रकार की क्रांति की चर्चा की। यह क्रांति साम्यवाद से संबंधित थी। मार्क्स ने साम्यवाद को पूंजीवाद के बाद की अवस्था माना है। मार्क्स के अनुसार, साम्यवाद सभी प्रकार के वर्ग विभाजनों को समाप्त कर देगा; इस प्रकार नैतिक तथा सामाजिक परिवर्तन के लिये एक नई शुरुआत करेगा। भावी समाज के बारे में मार्क्स और एंजल्स दोनों इसी प्रकार की छवि रखते थे।

समाजवादी क्रांति की मार्क्स की अवधारणा पूंजीवाद से समाजवाद में परिवर्तन को मानकर चलती है। वह बुर्जुआ क्रांति की व्याख्या कुलीनतन्त्र (aristocracy) की पराजय के रूप में करता है। इसके अनुसार यह पराजय पूंजीवाद के चरम सीमा पर पहुंचने के बाद होती है। दूसरी ओर, बुर्जुआ वर्ग की पराजय पूंजीवाद से समाजवाद में क्रांतिकारी परिवर्तन की पहली अवस्था है। मार्क्स के अनुसार क्रांति की इस समाजवादी अवस्था में वर्ग, श्रम का व्यावसायिक विभाजन तथा बाज़ार अर्थव्यवस्था बने रहेंगे। प्रत्येक की आवश्यकताओं के अनुसार वस्तुओं का वितरण क्रांति की उच्चतर अवस्था में ही संभव होगा। यह अवस्था साम्यवाद की अवस्था होगी। अतः मार्क्स के अनुसार साम्यवाद तक का परिवर्तन कई चरणों में से गुज़र कर आता है तथा यह सम्पूर्ण उत्पादन प्रणाली में क्रांतिकारी परिवर्तन लाता है। भारत में मार्क्सवादी विचारों का प्रभाव देखने के लिये 'सोचिए और करिये 2' में दिये प्रश्नों को हल करिये।

सोचिए और करिए 2

यह सभी मानते हैं कि मार्क्सवादी विचारों ने अनेक भारतीय विद्वानों, राजनीतिज्ञों, साहित्यकारों तथा चिन्तकों को प्रभावित किया है। निम्न प्रश्नों का उत्तर देते हुये उन्हें पहचानने का प्रयास कीजिये।

- (i) मैं कौन हूँ? मैंने हिन्दू धर्म के उद्विकास की आलोचनात्मक विवेचना देने वाला एक उपन्यास लिखा है। मेरा एक उपन्यास दूरदर्शन पर सीरियल के रूप में 1990 में प्रदर्शित किया गया था।
- (ii) मैं कौन हूँ? मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद ने मुझे प्रभावित किया। इससे प्रभावित होकर मैंने 1966 में लाइट ऑन अर्ली इण्डियन सोसायटी एण्ड इकॉनॉमी नामक पुस्तक लिखी।
- (iii) मैं कौन हूँ? मुझे ब्रिटिश कम्युनिस्ट पार्टी के भारतीय सिद्धांत शास्त्री के रूप में माना जाता रहा है।
- (iv) मेरा नाम क्या है? मैं केरल का वयोवृद्ध इतिहासवेत्ता तथा कम्युनिस्ट पार्टी का नेता रहा हूँ।
- (v) मैं कौन हूँ? मैंने भौतिकवाद पर एक पुस्तक लिखी तथा मार्क्सवादी ऐतिहासिक सिद्धांत की आलोचना की। भारतीय क्रांतिकारियों के लिये प्रशिक्षण केन्द्र आयोजित करने के लिये मुझे 1920 में ताशकन्द भेजा गया था। मैंने कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की दूसरी कांग्रेस में भाग लिया था। मैंने कांग्रेस द्वारा स्वीकृत उपनिवेश सिद्धांत (colonial thesis) का प्रारूप बनाया। इस प्रारूप को लेनिन ने परिवर्तित किया था।

वस्तुतः मार्क्स ने वर्ग विरोध का चरमोत्कर्ष पूंजीवाद में ही माना है। क्योंकि उत्पादन की नई शक्तियाँ उत्पादन संबंधों के अनुरूप नहीं होती। उत्पादन के वितरण के स्तर में दोनों वर्गों के मध्य खाई बढ़ती जाती है। इसके फलस्वरूप सर्वहारा वर्ग अपने वर्ग हितों के प्रति अत्यधिक जागरूक तथा गहन रूप से अलगावित (alienated) महसूस करता है। पूंजीवाद में उत्पादन की नई शक्तियाँ वृहत् स्तरिय उत्पादन में सक्षम होती हैं तथा इसके कारण बुर्जुआ वर्ग की समृद्धि बढ़ जाती है। लेकिन इससे सर्वहारा वर्ग की दशा में कोई अन्तर नहीं होता और सर्वहारा वर्ग निर्धनता और तंगहाली में गुज़र-बसर करता रहता है। इसके कारण वर्ग चेतना में वृद्धि होती है तथा समाजवादी क्रांति की दशाएं परिपक्व हो जाती हैं। मार्क्स के अनुसार, समाजवादी क्रांति विगत काल की सभी क्रांतियों से गुणात्मक रूप में भिन्न होगी। क्योंकि शोषण और असमानता के इतिहास के प्रारंभ होने के बाद यह पहला अवसर होगा जब कि समाज में एक वर्गविहीन स्थिति आयेगी और समाज के सभी सदस्यों के लिये आशा का संचार करेगी।

9.6 सारांश

इस खंड की प्रस्तुत अंतिम इकाई में हमने मार्क्स के वाद-संवाद प्रक्रियापरक भौतिकवाद व सामाजिक परिवर्तन के गंभीर दार्शनिक योगदान का अध्ययन किया। सर्वप्रथम आपको वाद-संवाद प्रक्रिया की अवधारणा से अवगत कराया गया, तत्पश्चात् वाद-संवाद प्रक्रिया एवं परिवर्तन के मौलिक नियम बताये गये। तदुपरांत समाज में क्रमिक उत्पादन प्रणालियों व सामाजिक परिवर्तन की विवेचना की गई। इस इकाई में हमने कार्ल मार्क्स द्वारा दिये गये वाद-संवाद प्रक्रिया के सिद्धांतों के संदर्भ में क्रमिक सामाजिक अवस्थाओं अथवा उत्पादन प्रणालियों का अध्ययन किया। अन्त में हमने क्रांति एवं सामाजिक परिवर्तन पर मार्क्स के विचारों की विवेचना की।

9.7 शब्दावली

वाद-संवाद प्रक्रिया	दो परस्पर विरोधी शक्तियों अथवा प्रवृत्तियों के बीच संघर्ष।
वाद-संवाद प्रक्रियापरक	यह वह मार्क्सवादी सिद्धांत है जो प्रत्येक वस्तु की व्याख्या

भौतिकवाद

परिवर्तन के संदर्भ में करता है। यह परिवर्तन पदार्थ में अंतर्निहित परस्पर विरोधी शक्तियों के निरंतर विरोधाभास के कारण होता है।

निषेध

एक नई अवस्था, जो कि गुणात्मक परिवर्तन का परिणाम होती है तथा प्राचीन को प्रतिस्थापित करने के लिये एक प्रगतिशील परिवर्तन है।

निषेध का निषेध

जब कोई वस्तु किसी प्राचीन व्यवस्था के निषेध के फलस्वरूप अस्तित्व में आती है तथा दुबारा इस वस्तु का निषेध गुणात्मक परिवर्तन के माध्यम से हो जाता है।

गुणात्मक परिवर्तन

नये का प्रादुर्भाव या प्राचीन की विलुप्ति गुणात्मक परिवर्तन है।

मात्रात्मक परिवर्तन

किसी भी वस्तु में ऐसा छोटा अथवा बड़ा परिवर्तन जिसमें कि वस्तु की पहचान परिवर्तित नहीं होती।

9.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

मार्क्स, कार्ल एण्ड एंजल्स, एफ., 1975. *कलैक्टेड वर्क्स* (वाल्यूम 6). मास्को प्रोग्रेस पब्लिशर्स लंदन

सांस्कृत्यायन, राहुल, 1954. *कार्लमार्क्स*. किताब महल: इलाहाबाद

9.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

- i) मात्रात्मक से गुणात्मक परिवर्तनों में परिवर्तन का नियम, निषेध का निषेध नियम, विपरीत की एकता व संघर्ष का नियम।
- ii) किसी भी वस्तु में ऐसा लघु अथवा वृहत् परिवर्तन जिसमें कि वस्तु की पहचान परिवर्तित नहीं होती।
- iii) नये का प्रादुर्भाव या प्राचीन की विलुप्ति गुणात्मक परिवर्तन है।

बोध प्रश्न 2

- i) अ) एशियाटिक उत्पादन प्रणाली
ब) प्राचीन उत्पादन प्रणाली
स) सामंतवादी उत्पादन प्रणाली
द) पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली
- ii) अ)
- iii) समाजवाद
- iv) समाजवाद के बाद साम्यवाद अवस्था आती है, इसकी एक विशेषता है सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व।

संदर्भ ग्रंथ सूची

(यह सूची उन विद्यार्थियों के लिये दी गई है जिन्हें कुछ विशिष्ट विषयों का अध्ययन विस्तार से करना हो।)

अ)

आरों, रेमण्ड, 1967. मेन करेंट्स इन सोशियॉलॉजिकल थॉट. पैन्गुइन बुक्स: लंदन

बर्लिन, आइज़ाया, 1939. कार्ल मार्क्स: हिज़ लाइफ एण्ड एन्वायरमेंट. थॉर्नटन बटरवर्थ लिमिटेड: लंदन

बोटोमोर, टी.बी., 1975. मार्क्सिस्ट सोशियॉलॉजी. मैकमिलन: लंदन

बोटोमोर, टी.बी. व अन्य (सम्पादित) 1983. ए डिक्शनरी ऑफ़ मार्क्सिस्ट थॉट, ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस: दिल्ली

बखारिन, एन.आई., 1926. हिस्टॉरिकल मैटीरियलिज़्म: ए सिस्टम ऑफ़ सोशियॉलॉजी. एलेन एण्ड अन्विन: लंदन

कोज़र, लेविस ए., 1971. मास्टर्स ऑफ़ सोशियॉलॉजिकल थॉट: आइडियाज़ इन हिस्टॉरिकल एण्ड सोशल कंटेक्स्ट. हाकोर्ट ब्रेस जोवानेविच: न्यूयार्क

एंजल्स, फ्रेडरिक, मैनुस्क्रिप्ट 1847-1914. प्रिंसिपल्स ऑफ़ कम्युनिज़्म. एडवर्ड बर्नस्टाइन: बर्लिन

ह्युबरमैन, लिओ, 1969. मैन्स वर्ल्डली गुड्स, पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस: नई दिल्ली

मैकरे, एच.जी., 1962. कार्ल मार्क्स, टिमोथी रायज़न में (संपादित) दी फ़ाऊंडिंग फ़ादर्स ऑफ़ सोशल साइंसिज़. पैन्गुइन बुक्स: हैमंड्सवर्थ, पृष्ठ 56-67

मार्क्स, के.एच., (मैनुस्क्रिप्ट 1957-58), 1939. गुंडरीज़. (अंग्रेजी अनुवाद मार्टिन निकोलॉन के आमुख सहित) पैन्गुइन बुक्स: हैमंड्सवर्थ, (1957-58 में लिखित तथा 1939-41 में) दो खंडों में सर्वप्रथम मास्को में फ़ॉरेन लैंग्वेज पब्लिशिंग हाऊस द्वारा प्रकाशित

मार्क्स, के.एच., मैनुस्क्रिप्ट ऑफ़ 1859. ए कंट्रीब्यूशन टू द क्रिटिक ऑफ़ पॉलिटिकल इकॉनॉमी. फ़्रांज़ डुंकर: बर्लिन

मार्क्स, के.एच., मैनुस्क्रिप्ट 1861-1879. कैपीटल. (खंड I, II एवं III) ऑटो माइसनर: हानबुरी

मार्क्स, के.एच., मैनुस्क्रिप्ट 1844-1959. इकॉनॉमिक एंड फिलॉसॉफिकल मैनुस्क्रिप्ट. डिस्क जे. स्तनीक द्वारा संपादित व मार्टिन मिलीगन द्वारा अनुदित. लॉरेस एंड विस्हार्ट: लंदन

मार्क्स, के.एच. एण्ड एंजल्स एफ, (मैनुस्क्रिप्ट ऑफ़ 1845-46) 1937. द जर्मन आइडियोलॉजी. हिस्टोरिष-(क्रिटिष) गेजाम्ट आऊसगाबे (ऐतिहासिक-आलोचनात्मक सम्पूर्ण संस्करण)

मार्क्स, के.एच. एण्ड एंजल्स एफ, (मैनुस्क्रिप्ट 1848). मैनीफेस्टो ऑफ़ द कम्युनिस्ट पार्टी. बुर्गहार्ट: लंदन

मार्क्स, के.एच. एण्ड एंजल्स एफ, 1975 कलैक्टैड वर्क्स (50 ग्रंथों में) मॉस्को प्रोग्रेस पब्लिशर्स: लंदन

पैत्रोविक, गाजो, 1983. एलिनेशन. इन टी.बी. बॉटोमोर संपादित में ए डिक्शनरी ऑफ़ मार्क्सिस्ट थॉट. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस: नई दिल्ली

ब) हिन्दी में उपलब्ध पुस्तकें

बोटोमोर, टी.बी., 1975. मार्क्सवादी समाजशास्त्र. (अनुवादक: सदाशिव द्विवेदी) मैकमिलन कंपनी ऑफ़ इंडिया लिमिटेड: नई दिल्ली

मिश्र, शिव कुमार, 1973. मार्क्सवादी साहित्य चिंतन: इतिहास तथा सिद्धान्त. मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी: भोपाल

यशपाल, 1983. मार्क्सवाद. लोकभारती प्रकाशन: इलाहाबाद

शर्मा, रामविलास, 1986. मार्क्स, त्रोट्स्की और एशियाई समाज. लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद

शर्मा, रामविलास, 1986. मार्क्स और पिछड़े हुए समाज. राजकमल प्रकाशन: नई दिल्ली

सांकृत्यायन, राहुल, 1954. कार्ल मार्क्स. किताब महल: इलाहाबाद